रूप-शिखा

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

पात्र

रूपमती	...	एक नृत्य, संगीत प्रवीणा राजपूत रमणी
बाजबहादुर	...	मालवा का सुलतान
आदमख़ान	...	साम्राट अक़बर का एक सेनापति
वीरसिंह	...	बाजबहादुर की सेना का सेनापति
विजयसिंह	...	आदमख़ान के अधीन मुग़ल सेना का एक सेनानायक

रूप-शिखा

पहला दृश्य

[स्थान—मालव-प्रदेश का सारंगपुर नामक कस्बा। तालाब के निकट एक मंदिर। मंदिर की सीढ़ियों के निकट बाजबहादुर विकल मन अस्त-व्यस्त पद-विक्षेप कर रहा है। वीरसिंह का प्रवेश।]

वीरसिंह—(झुककर कोर्निश करने के पश्चात्) जहाँपनाह विश्राम का समय....

बाजबहादुर—नहीं, वीरसिंह, बाजबहादुर की ज़िंदगी में आराम शायद नहीं है। रानी दुर्गावती के हाथों शिकस्त खाने के बाद से मानों मैं दीवाना हो गया हूँ। एक औरत से हार गया। छिः, कैसी शर्म की बात है। दुर्गावती की, दोनों हाथों से तलवार घुमाती हुई मूरत आँखों के आगे से हटती ही नहीं है।

वीरसिंह—हार या जीत मनुष्य की बहादुरी की कसौटी नहीं है। सफलता पाने के लिए पुरुषार्थ के साथ प्रारब्ध भी चाहिए। पुरुष वह है जो कर्म करता है, हार या जीत से दुखी या प्रसन्न नहीं होता। मेरी आप से विनम्र प्रार्थना है कि इस हार की कसक को भूल जाइये।

बाजबहादुर—हाँ, भूल ही तो जाना चाहता हूँ और इसलिए ज्यादा शराब पीने लगा हूँ। रोज़ नई शराब और

रोज़ नयी नाज़नी। शराब और हुस्न के नशे में मैं बेइज़्ज़ती के दर्द को, हृदय में चुभते रहनेवाले काँटे की कसक को भूल जाने की कोशिश कर रहा हूँ। आज की महफिल का इन्तज़ाम किया तुमने?

वीरसिंह—आपने सेवक को ऐसी कोई आज्ञा नहीं दी।

बाजबहादुर—तो क्या मुझे रोज़ हुक्म देना पड़ेगा! वीरसिंह, भूख रोज़ लगती है और खाना खाया जाता है। मेरी हसरतें भी भूखी प्यासी हैं। उनके लिए भी—

वीरसिंह—नित्य ही दाना-पानी चाहिए। अच्छी बात है, भविष्य में आपको आज्ञा देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, आप निवास-स्थान पर तो चलें, उसके पश्चात्....

बाजबहादुर—नहीं, पहले आरामगाह में आँखों के आराम देनेवाले खूबसूरत चाँद को पहुँचाओ, उसके बाद मुझे बुलाना।

वीरसिंह—और तब तक श्रीमान्....

बाजबहादुर—तब तक हम तालाब की लहरों से दिल बहलाएँगे। ऊपर तक लबालब भरा हुआ छलछलाता तालाब मानों जवानी के नशे में सराबोर औरत की बड़ी बड़ी आँखें। और तालाब के पीछे वे धानी साड़ी की तरह लहराते हुए खेत, और उनके पीछे घने हरे जंगल—औरत के दिल की तरह खूबसूरत—लेकिन राज़ से भरे हुए। चाँदनी में चमकती हुई मालवा की यह काली-काली ज़मीन—औरत की लटों की तरह

काली। (अचानक चौंककर) वीरसिंह, तुम अभी तक यहाँ खड़े हो ?

वीरसिंह—क्षमा कीजिये, आपके भाषण में मुझे कविता का आनंद आ रहा था। मैं अपना कर्तव्य भूल गया। अब जाता हूँ।

(वीरसिंह का प्रस्थान)

बाजबहादुर—बेचारा वीरसिंह, शेर की तरह बहादुर। मेरी ढाल बनकर जंग के मैदान में हमेशा साथ रहनेवाला। मैं तो समझता था, यह चलता-फिरता चट्टान का टुकड़ा है, लेकिन जान पड़ा कि इसे भी कविता में मज़ा आता है। इसकी पसलियों के नीचे एक धड़कनेवाला दिल है।

(रूपमती का—हाथ में पूजा-सामग्री लिए प्रवेश। दूसरे हाथ में वीणा है। बाजबहादुर पर एक नज़र डालकर मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़ती जाती है। प्रत्येक पदक्षेप ऐसा जान पडता है मानों नृत्य कर रही है। रूपमती मंदिर में प्रवेश करके ओझल हो जाती है।)

बाजबहादुर—ज़िन्दगी के सूने आसमान में मायूसी की काली घटाओं के बीच यह कौन बिजली की तरह कौंधी और चली गयी ! मोर के रंगीन पंखों की तरह रंगीन ओढ़नी में कुंदन की तरह चमकनेवाले जिस्म को लजाये ऐसी बेफ़िक्री से जा रही थी मानों दुनिया में उसके सिवा कोई है ही नहीं। एक-एक कदम इस तरह रख रही थी मानों नाच शुरू करनेवाली है। दिल तो मानों नाच ही रहा था।

(मन्दिर में रूपमती वीणा बजाती है और गाती भी है। बाजबहादुर मन्त्र-मुग्ध की तरह सुनता है।)

नेपथ्य में—(गीत)

क्यों दिल का आराम गँवाता ?
कोयल गाती सुख का गाना
कलिका पर मधुकर दीवाना
गुन गुन रस के गाने गाता
क्यों दिल का आराम गँवाता ?

(गाना शान्त होता है लेकिन वीणा बजती रहती है।)

बाजबहादुर—'क्यों दिल का आराम गँवाता ?' मानों मुझसे ही पूछ रही है।

(गीत आगे बढ़ता है)

नेपथ्य में—(गीत)

झर-झर बहता जाता,
अपने दिल की कटता जाता,
क्यों न हृदय तेरा बह पाता ?
क्यों दिल का आराम गँवाता ?

(गीत रुकता है, किन्तु वीणा बजती ही रहती है।)

बाजबहादुर—'क्यों न हृदय तेरा बह पाता ?' बहने की क्या बात, आज तो बाढ़ आ रही है। तूफ़ान उठ रहा है।

(गीत आगे बढ़ता है)

नेपथ्य में—(गीत)

डाल डाल पर कलियाँ झूलीं,
झूल झूल कर कलियाँ फूलीं,
तू क्यों माला नहीं बनाता ?
क्यों दिल का आराम गँवाता ?

(गीत रुकता है, किन्तु वीणा बजती रहती है।)

बाजबहादुर—माला तो बाजबहादुर ने बनाई—लेकिन एक भी फूल ऐसा नहीं मिला जिसके ओंठों पर हमेशा मुसकान रह सकी हो।

नेपथ्य में—(गीत)

जब तक जीना हँसकर जीना,
अन्त मृत्यु का मदिरा पीना,
जो जग में आता, वह जाता
क्यों दिल का आराम गँवाता?

(गीत समाप्त होता है और नाचने से मुखरित होनेवाले पायलों के स्वर सुनाई देते हैं।)

बाजबहादुर—ज़िन्दगी के परदे के पीछे उम्मीद के पायल बज रहे हैं। तारीकी को चीरकर नयी किरनें मेरे दिल में रोशनी करने को बढ़ती चली आ रही हैं। ऐसा रूप मेरी आँखों ने पहले नहीं देखा, ऐसी मस्तानी वीणा की तान घुँघरूओं की ऐसी सुरीली आवाज़ पहले नहीं सुनी।

(नाच बन्द होता है)

बाजबहादुर—खामोश हो गयी हैं वे स्वर—लेकिन मेरे दिल की धड़कनें बढ़ गयी हैं। ओ स्वरों की रानी, तुम परदे के पीछे ही रहकर बजाती रहो अपने सुरों को और मैं उन्हें सुनता रहूँ। सारी ज़िन्दगी एक रात की तरह खत्म हो जाए।

(रूपमती मन्दिर से बाहर निकल कर आती है। सीढ़ियाँ उतरती है। बाजबहादुर अकस्मात उसके सामने आ खड़ा होता है। रूपमती चौंक पड़ती है। उसके हाथ से थाल छूट जाता है। वीणा भी गिर पड़ती है।)

बाजबहादुर—मैं मुसलमान हूँ और भेंट-पूजा की चीज़ें नहीं तो

रूपमती—आप उठा देते! साहस तो खूब है। आप यहाँ से............

बाजबहादुर—'चले जाइये।' यही तो आप कहना चाहती हैं। क़िस्मत! किसीने तो इस कमबख्त से कहा होता 'आइये।' सभी कहते हैं 'जाइये।' तभी तो लूटना-चोरी करना मेरी आदत हो गयी है। ऐ हुस्न के दरिया, क्या बूँद भर पानी भी मैं तुमसे नहीं पा सकूँगा!

रूपमती—मैं गरीब हूँ—क्या इसीलिए आप ऐसा दुस्साहस कर रहे हैं? मैं कहती हूँ हटो, रास्ता छोड़ो।

बाजबहादुर—मालवा का सुलतान बाजबहादुर रास्ता छोड़ना नहीं जानता। जिस बगीचे के जिस फूल पर मेरी नज़र पड़ी है उसे मेरे गले का हार बनना पड़ा है। तुम रास्ता छोड़ने का हुक्म किसके भरोसे पर देती हो?

(बाजबहादुर आगे बढ़ता है। रूपमती कमर से बँधी छुरी निकालती है। बाजबहादुर रुक जाता है।)

रूपमती—इसके भरोसे पर। गरीब राजपूतानियाँ भी अपनी इज़्ज़त बचाना जानती हैं, सुल्तान साहब! यह कटार किसी भी अत्याचारी के कलेजे का खून पीने के लिए प्रस्तुत है और आवश्यकता पड़ने पर मेरे हृदय के रक्त में स्नान करने में भी संकोच नहीं करेगी। बोलो, रास्ते से हटते हो या नहीं?

बाजबहादुर—मैं तुम्हारे रास्ते का रोड़ा नहीं, काँटा नहीं, फूल भी नहीं, सिर्फ़ धूल बनकर पड़ा हुआ हूँ। तुम मेरी हस्ती को कुचलती हुई जाओ। (रूपमती के पैरों में सिर झुकाता है) मेरे सिर को ठुकराती हुई तुम जा सकती हो। मैं भूल गया हूँ कि मैं मालवे का सुलतान हूँ। मैं तो तुम्हारे दरवाज़े पर खड़ा हुआ भिखारी हूँ। (उठकर) जाओ, मैं रास्ता नहीं रोकूँगा। मैंने आज तक औरत को मर्द का खिलौना समझा है। आज तक किसी औरत की इज़्ज़त आबरू का ख्याल नहीं किया, मैंने अपनी ख्वाहिश पर उन्हें बे-रहमी से मसल डाला है, लेकिन आज तुम से हार मानता हूँ। तुम जाओ।

(रूपमती पूजा की चीज़ें उठाती है। बाजबहादुर चला जाता है।)

रूपमती—सुना था सुल्तान अत्यन्त निर्दय है। उसने अनेक हिन्दू और मुसलमान कुमारियों के जीवन भ्रष्ट किये हैं। आज वह मेरे आगे से भाग क्यों गया? वह सुलतान है, वह जुल्म करे, तो उसे रोकनेवाला कौन है? आज उसने अपनी शक्ति का प्रयोग क्यों नहीं किया! क्या मैं इतनी तुच्छ हूँ कि उसके हृदय में एक हल्की-सी प्यास जगाकर रह गयी। वह पागल क्यों नहीं हो उठा? लेकिन.... मैं आज यह क्यों सोच रही हूँ? आह, आज मुझे क्या हुआ है—जैसे पहली बार मैंने पुरुष को देखा है। चन्द्र को देखकर जैसे समुद्र में ज्वार उठता है उसी तरह आज मेरे हृदय में तूफ़ान उठ रहा है। यह रूप-शिखा एकान्त में जब जल रही थी उसकी ओर उड़ता हुआ एक शलभ आया—आया तो वापिस क्यों चला गया?

(विचार-मग्न-सी बैठी रह जाती है। इस बीच बाजबहादुर फिर प्रवेश करता है।)

बाजबहादुर—वाह, तुम अभी तक यहीं हो ? मैं कहता हूँ, तुम चली जाओ ! मेरी आँखों के आगे से चली जाओ। मैं इस हुस्न की झाँकी को बर्दाश्त नहीं कर सकता। तुम-जैसी पाक-दामन और मासूम लड़की को छू भी नहीं सकता। तुम राजपूत की लड़की हो न, रानी दुर्गावती भी तो राजपूत की बेटी है। मैं तुम्हारी इज़्ज़त करना चाहता हूँ। तुम बहुत खूबसूरत हो और मुझे अपने ऊपर भरोसा नहीं है; मुझे पापी बनने का मौका न दो। तुम जाओ। जिन सीढ़ियों पर तुमने कदम रखे हैं उनकी इबादत करता हुआ मैं ज़िन्दगी के दिन पूरे कर दूँगा। तुम जाओ।

रूपमती—जाऊँ ?

बाजबहादुर—हाँ, जाओ।

(रूपमती जाती है)

बाजबहादुर—तो वह चली और मैंने नाम भी नहीं पूछा। सुनो तो ओ राजपूत की बेटी, ओ हुस्न की बिजली !

(रूपमती का प्रवेश)

रूपमती—कहिये सुलतान !

बाजबहादुर—तुम्हारा नाम क्या है ?

रूपमती—मुझे 'रूपमती' कहते हैं।

बाजबहादुर—तुम्हारा घर ?

रूपमती—घर सामने जो झोंपड़ी नज़र आ रही है। लेकिन राजमहलों के रहनेवालों की झोंपड़ी पर नज़र क्यों पड़ रही है?

बाजबहादुर—झोंपड़ी! काश, ऐसी झोंपड़ी में मैं भी रह पाता!

(बाजबहादुर का प्रस्थान)

रूपमती—कैसी उलझन है? वह गये तो जाएँ—मेरा मन क्यों उदास हो? झोंपड़ी और महल का मेल हो भी जाए, तब भी क्या हिन्दू और मूसलमान का मेल हो सकेगा?

(रूपमती का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—सारंगपुर के तालाब की मेढ़। एक युवती मेढ़ पर बैठी है, उसके पास खाली घड़ा रखा है। चार युवतियाँ सिर पर खाली घड़े रखे हुए आती हैं।]

आनेवाली युवतियों में से एक—क्यों री कंचन, बैठी-बैठी किसकी राह देख रही है?

कंचन—रूपमती की।

(तीन युवतियाँ चली जाती हैं।)

आनेवाली—तब तो तुझे जीवन भर राह देखनी पड़ेगी।

(आनेवाली भी कंचन के पास बैठती है।)

कंचन—यह क्या कहती है, मालती?

मालती—सच ही तो कहती हूँ। मालवा का सुलतान उसपर लट्टू हो गया और उसे अपनी बेग़म बना लिया। आखिर थी तो नाचनेवाली ही, बेग़म बनने में कौन उसकी इज़्ज़त घटती थी।

कंचन—नाचना-गाना तो कलाएँ हैं, उनका अभ्यास करने से क्या जात बदल जाती है? रूपमती है तो राजपूतानी!

मालती—है तो राजपूतानी—लेकिन राजपूतानियाँ नाच-गाकर अपने माँ-बाप का पेट भरती रही हैं! उसको भगवान ने रूप का भंड़ार दिया है—वह भी तो उसके धंधे की पूँजी है।

कंचन—कैसी बातें करती मालती! बचपन से हम रूपमती को जानती हैं। नाचने-गाने की प्रतिभा उसे प्रकृति से मिली है। रूप भी प्रकृति ने दिया है—लेकिन रूप का व्यापार

करना तो उसने कभी नहीं चाहा। कितने मतवाले भौंरे इस फूल के चारों तरफ़ चक्कर लगाकर चले गये—लेकिन क्या किसीको उसकी एक पंखुरी को स्पर्श करने का साहस हुआ ?

मालती—हाँ-हाँ, तू हमेशा पहरेदारी करती थी न ?

कंचन—पहरेदारी करती थी उस की ग़ैरत ! सच पूछो तो वह माँ-बाप के बँदीघर में—पिंजरे में फँसे हुए पंछी की तरह व्याकुल और उदास रहती थी।

मालती—तब किसी के साथ क्यों नहीं गयी ?

कंचन—भागना क्या इज़्ज़तदार नारी का काम है ?

मालती—नहीं, शरीर बेचना इज़्जत का काम है !

कंचन—रूपमती कुबेर का ख़जाना लेकर भी अपने तन का सौदा नहीं कर सकती।

मालती—लेकिन, क्या तुझे नहीं मालूम कि रूपमती के पिता ने रूपमती के शरीर के तोल के बराबर सोना लेकर उसे मालवा के सुलतान की बेग़म बनने की अनुमति दी है ?

कंचन—तब तो रूपमती के पिता ने सोचा होगा कि रूपमती डील-डौल में छोटी-मोटी हथिनी होती !

मालती—तब कोई पत्थरों के मोल में भी उसे न खरीदता। सौदा तो 'कनक छरी-सी कामिनी' का ही होता है।

कंचन—लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि रूपमती अचानक ऐसी पतिता कैसे हो गयी। वह तो मुझसे कहती थी—'मेरा जी चाहता है कि मैं भी तलवार बाँधकर युद्ध करने जाऊँ। जो पुरुष ललचाई नज़रों से मेरी तरफ़ देखते हैं उनकी आँखें निकाल लूँ।'

मालती—लेकिन, कंचन, यह दिल बड़ा दग़ाबाज़ है। क्या पता, रूपमती के दिल ने ही, उसके संयम के बाँध को तोड़ डाला हो। कुछ भी हो, रूपमती अपने गाँव की शोभा थी। इसका चला जाना अच्छा नहीं हुआ।

कंचन—सच कहती हो, मुझे तो ऐसी वेदना हो रही है जैसी मणि गँवा देने पर साँप को होती है।

मालती—तो तुम भी चली जाओ रूपमती के साथ ही। बाजबहादुर का अन्तःपुर तो किसी भी युवती का स्वागत करने को प्रस्तुत रहता है।

कंचन—मुझे मंजूर है—अगर तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो।

मालती—मुझे क्यों, सारंगपुर की सारी युवतियों को ले चलो न?

कंचन—लेकिन रूपमती को पाने के बाद क्या बाजबहादुर किसी और स्त्री की तरफ़ देखेगा? बाजबहादुर ने धन से रूपमती को मोल तो लिया है, लेकिन देख लेना वह इसका बदला लेगी। वह उसे अपने संगीत के स्वरों पर इस प्रकार नचाएगी जिस प्रकार सँपेरा नाग को नचाता है।

(तीनों युवतियाँ सिरपर जल से भरे हुए घड़े रखे हुए प्रवेश करती हैं।)

एक युवती—क्या यहीं बैठी रहोगी या पानी भरकर घर भी चलोगी।

(कंचन और मालती अपने घडे उठाकर उठती हैं और पानी भरने जाती हैं—शेष तीनों युवतियाँ दूसरी तरफ़ चली जाती हैं।)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—माँडू के किले में रूपमती का शयनागार। बाजबहादुर पलंग पर बैठा हुआ है। रूपमती मदिरा का पात्र भरकर देती है।]

बाजबहादुर—(मद-पात्र ग्रहण करते हुए) लाओ रूपमती! मौत का प्याला पिला दो।

रूपमती—ऐसा क्यों कहते हैं आप?

बाजबहादुर—जो नशा आदमी को अपने फ़र्ज़ की याद भुला दे वह मौत ही तो है, रूपमती! देखती तो हो, हमारे चारों तरफ़ आग लगी हुई है, लेकिन तुम्हारे साये में पड़े हुए बाजबहादुर को मानों उसकी लपटें छू नहीं पा रहीं। हम तूफानी समुद्र में कमज़ोर-सी नाव पर बैठे हुए बहे जा रहे हैं। तुम्हारे रूप और शराब ने असलियत पर परदा डाल रखा है। रूपमती, तुम राजपूतनी हो न?

रूपमती—हाँ, इस बात का मुझे सदा गर्व रहा है।

बाजबहादुर—राजपूत की बेटी अपने प्रेमी को निकम्मा नहीं बनाती, तुमने मुझे क्यों बेकार कर दिया है? सदा ही प्रीत के प्याले पीते हुए तो ज़िन्दगी नहीं जी सकती। वह देखो, खूंटी पर टँगी हुई तलवार में जंग लग गया है।

रूपमती—लग भी जाने दीजिये। तलवार चलाने के लिए वीरसिंह है, और भी हजारों सैनिक हैं। वीरसिंह सच्चा राजपूत है, वह अपने स्वामी से विश्वास-घात नहीं कर सकता और उसके अधीन सैनिक उसके इशारे पर जान देने को सदा प्रस्तुत रहेंगे।

बाजबहादुर—तलवार से कायम की गयी सलतनत तभी तक टिक सकती है जब तक उसके मालिक के हाथों में तलवार है। तुम तो जानती हो, हमपर दुश्मन ने....

रूपमती—मैं कुछ नहीं जानना चाहती। मैं सिर्फ़ तुम्हें चाहती हूँ—शेष संसार को आँखों के सामने आने भी नहीं देना चाहती। आप राजमहल के रहनेवाले हैं और मैं झोंपड़ी में रहती थी। आप का राजमहल अगर काल का थप्पड़ खाकर गिर पड़ेगा, तो झोंपड़ी तो हमारा स्वागत करेगी ही। मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध राजमहल की बंदिनी बनी, तो आप मेरे प्रेम की खातिर झोंपड़ी में रहना स्वीकार करेंगे—इसका मुझे भरोसा है। क्या एक झोंपड़ी भी—संसार हमारे लिए नहीं छोड़ेगा? यह शराब नहीं मिलेगी तो बावड़ियों का पानी भी न मिलेगा? ये तरह-तरह के भोजन नहीं मिलेंगे, तो क्या ज्वार की रोटियाँ भी नहीं मिलेंगी? मदभरी चाँदनी रातें होंगी, तुम होगे, मैं हूँगी। शराब नहीं होगी तो क्या है, वीणा में क्या उससे कम नशा है?

बाजबहादुर—और तुम्हारे स्वर में क्या वीणा की झंकार से कम जादू है। छेड़ दो वीणा की तान के साथ अपने गान। दोनों में होड़ होने दो। तान और गान की लहरों में टक्कर होने से जो भँवर पैदा हो उस में मेरी हस्ती की नाव को डूब जाने दो। छेड़ो गाना।

रूपमती—(वीणा उठाकर लाती है और बजाती और गाती है)

गूंजे आज प्रलय की वाणी!

बाजबहादुर—यह क्या गा उठी तुम ?

रूपमती—कभी कभी सत्य दीवारों को तोड़कर प्रकट हो उठता है। कोई अदृश्य प्राणों में बैठकर मेरे स्वरों को बदल गया है। (गाने लगती है)

गूँजे आज प्रलय की वाणी !
आँधी आये, बादल छाये,
बिजली भीषण रूप दिखाए,
गहर गहर अब बरसे पानी
गूँजे आज प्रलय की वाणी !
सूर्य छिपे, चंदा छिप जाए,
अंधकार में जगत् समाये,
रुक जाएँ साँसें दीवानी
गूँजे आज प्रलय की वाणी।
युग-युग से जो गीत सुनाती
पर न कभी पूरा कर पाती
गा ले उसको……

(गीत समाप्त नहीं होता कि बीच में ही एक दासी आती है और कोर्निश करती है।)

दासी—सरकार, सेनापति आए हैं।

रूपमती—इतनी रात को !

बाजबहादुर—यही तो दौलत और ताकत का घमंड़ करनेवाले नवाबों, सुलतानों, राजा-महाराजाओं, बादशाहों की ज़िन्दगी है, रूप ! (दासी से) भेज दो उन्हें।

(दासी का प्रस्थान)

रूपमती—तो अब प्रीत की महफ़िल समाप्त होती है और राजनीति का अखाड़ा प्रारम्भ होता है।

(वीणा को लिए हुए रूपमती प्रस्थान करती है।)

बाजबहादुर—राजनीति के अखाड़े में हार खाकर मैं प्रीति की महफ़िल में आ बैठा था, लेकिन राजनीति क्या मेरा पीछा छोड़ेगी ? मैं देखता हूँ, वह मेरी हस्ती को धूल में मिलाकर ही दम लेगी। अब सब कुछ ख़तम होनेवाला है। मुझमें क्या नहीं था। मेरी बहादुरी का सिक्का सारे हिन्दुस्तान में माना जाता था। अचानक दुर्गावती ने मेरी शोहरत के चाँद को बादलों से ढक दिया। उसके बाद रूपमती ने हुस्न की जंजीरों से मुझे कस लिया। यह ऐसी शिकस्त है जो कभी महसूस नहीं होती—यह वह ज़हर है जो जान लेता हुआ जान नहीं पड़ता। मैं धीरे-धीरे मौत के मुँह में दाख़िल हो रहा हूँ। अक़बर बादशाह ने आदमखान को भेजकर मुझपर चढ़ाई कर दी है। मेरी फ़ौज उससे लोहा ले रही है और मैं शराब और हुस्न के दरिया में बह रहा हूँ।

(वीरसिंह का प्रवेश)

वीरसिंह—(कोर्निश करके) सरकार, आदमखान ने क़िले पर पूरे बल से आक्रमण कर दिया है और एक तरफ़ की दीवार टूट भी चली है।

बाजबहादुर—दुश्मन ने रात में ही हमला बोल दिया है ?

वीरसिंह—जी हाँ, रात में ही। अब क़िला हमारी रक्षा नहीं कर सकता।

बाजबहादुर—जब किले की दीवार ने जवाब दे दिया है तब बचने का रास्ता ही क्या है? अफसोस है कि हथियारों की झंकार में मज़ा लेनेवाला बाजबहादुर औरत के पाँवों की रुनझुनन में फँसा हुआ है। यह क्या हो रहा है? मैं इस दुनिया में आँधी की तरह आया था और बुलबुले की तरह जा रहा हूँ। वीरसिंह यह मालवा देश दीवाना बना देनेवाला है। यहाँ काले-काले खेतों में अफ़ीम पैदा होती है, यहाँ की हवा में अफ़ीम है। यहाँ की नाजनियों की साँसों में अफ़ीम है। मुझे भी इन्होंने अफ़ीमची बना दिया है। मेरी तलवार लाओ। रूपमती को बुलाओ। उस सफ़ेद नागिन का फन मैं काट डालूँगा।

(नेपथ्य में तोप चलने की आवाज़)

बाजबहादुर—सुना, वीरसिंह! अब दुश्मन दूर नहीं है। मैं रुक नहीं सकता। दुश्मनों से बदला लेने के लिए ज़िन्दा रहना है। मैं जाता हूँ—लेकिन जाते-जाते इन धरती के हूरों को जिन्होंने सिपाही को अफीमची बना दिया है, तलवार के घाट उतारे जाता हूँ। मैं पागल था कि एक के बाद एक भोली-भाली कली को अपनी ख्वाहिश की आग में झोंकता गया। मैं किसीका गुलाम नहीं बना था, लेकिन रूपमती ने मुझे दुनिया की सब चीज़ों से दूर करके अपने हुस्न के बादलों से ढक लिया। मैं अपने आप को भूल गया। मैं जाता हूँ, लेकिन रूपमती भी अब ज़िन्दा नहीं रह सकती।

(तलवार को म्यान से निकालता हुआ प्रस्थान करता है।)

वीरसिंह—मूर्ख सुलतान ! राजपूत बाला के सतीत्व का मोल कम नहीं है—चाहे वह नर्तकी ही क्यों न हो । रूपमती, ग़रीब बाप की बेटी है, तभी तो धन देकर सुलतान ने उसे खरीदकर बेगम बना लिया । लेकिन उसने रूप की ज्वाला में इस पतंगे को भून डाला । पर रूपमती की जान लेने को प्रस्तुत है, लेकिन मैं उसे मरने नहीं दूँगा । जाऊँ, उसे बचाऊँ ।

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[स्थान—आदमख़ान के डेरे के बाहर। आदमख़ान और उसका एक साथी—जो राजपूत जान पड़ता है—दोनों डेरे के सामने इधर से उधर घूम रहे हैं, मानों किसी की प्रतीक्षा में। समय—रात]

आदमख़ान—इतनी आसानी से माँडू का किला हमारे हाथ आ जाएगा, इसकी मुझे भी न उम्मीद थी, विजयसिंह !

विजयसिंह—निश्चय ही यह एक आश्चर्य की बात है। बाजबहादुर कायर नहीं है, न जाने क्योंकर अपने पुरुषार्थ को, अपनी शक्ति को भूल बैठा है !

आदमख़ान—सुना है, रूपमती की ख़ूबसूरती ने उसे मदहोश कर दिया है।

विजयसिंह—निस्संदेह, रूपमती के रूप-गुण की चर्चा सारे मालवा में है। वह न केवल अनिन्द्य सुंदरी है बल्कि एक श्रेष्ठ गायिका एवं निपुण नर्तकी भी है।

आदमख़ान—बादशाह आलिमा का भी हुक्म है कि मालवा को फ़तह करके रूपमती को उनके सामने हाज़िर किया जाए।

विजयसिंह—(ताने के साथ) सम्राट साहित्य और कला के प्रेमी जो हैं। उनकी राज-सभा के एक रत्न तो हैं ही, रूपमती के पहुँच जाने से शोभा और भी बढ़ जाएगी, लेकिन रूपमती को सम्राट की राज-सभा की नर्तकी बना सकना संभव भी है, इसमें मुझे संदेह है।

आदमख़ान—बाजबहादुर और शाहंशाह अक़बर दोनों में से एक को पसंद करने को कहा जाए तो एक नाचनेवाली—दौलत से अस्मत का सौदा करनेवाली—नाचनेवाली—क्या बाजबहादुर को पसंद करेगी ?

विजयसिंह—औरत—चाहे वह नाचनेवाली हो—दिल का सौदा एक बार करती है ।

आदमख़ान—एक बार करती है—रूपमती की ज़िन्दगी में वह 'एक बार' अभी नहीं आया है ।

विजयसिंह—तब वह बाजबहादुर के हरम में किसलिए और किस तरह आ गयी ?

आदमख़ान—उसके वालदेन का लालच और उसकी बेबसी दोनों ने बे-रहमी से उसे ला पटका माँडू के राजमहल में ।

विजयसिंह—ऐसा सोचने का कारण ?

आदमख़ान—जो प्यार करता है वह अपने प्रेमी को पालतू पंछी नहीं बनाता । वह उसे रात-दिन शराब और संगीत के नशे में मस्त रखकर उसके फ़र्जों की तरफ़ से बे-ख़बर नहीं कर देती । वह उसकी ज़िदगी की ताकत बनकर आता है—बेहोशी नादानी और कमज़ोरी बनकर नहीं आता ।

विजयसिंह—तो सम्राट अक़बर के दरबार में जाना वह पसंद करेगी—इसका भी क्या निश्चय ?

आदमख़ान—इसमें मुझे जरा भी शक नहीं है । वह सच्चे मानी में अपने फन की इबादत करनेवाली है, जिस्मानी ख्वाहिशों से कहीं ऊपर । ऐसे शख्स के लिए हिन्दुस्तान में

सबसे अच्छी जगह है—बादशाह अकबर का दरबार जो तानसेन की तान से गूँजता रहता है। बादशाह अपने दरबार में हर फ़न की माहिर शख्सियत को इज़्ज़त देना चाहते हैं।

विजयसिंह—और अपने अत:पुर में भारत भर की प्रत्येक अनिंद्य सौंदर्यमयी युवती को अपने विलास का साधन बनाना चाहते हैं।

आदमख़ान—खामोश, तुम बादशाह आलिमा की तौहीन करते हो!

विजयसिंह—सिपहसालार आदमख़ान! राजपूत सच बोलने में भय से भी भयभीत नहीं होता। इसमें बादशाह की तौहीन का प्रश्न नहीं है—यह एक सचाई है। क्या सम्राट ने अपने राजमहल में अनेक राजघरानों की राजकुमारियों को बेग़म बना कर नहीं रखा? मैं उन्हें देवता नहीं समझता—आदमी भी नहीं।

आदमख़ान—क्या समझते हो?

विजयसिंह—जो समझता हूँ उसे ज़बान पर नहीं लाना चाहता।

आदमख़ान—क्योंकि जानते हो कि आदमख़ान की तलवार ज़बान काट लेगी।

विजयसिंह—जब तक हाथ में तलवार है, कोई मेरी ज़बान नहीं काट सकता। एक क्या, हज़ार आदमख़ान मेरी छाया को भी नहीं छू सकते।

आदमख़ान—बदतमीज़ राजपूत, तुझे मौत का भी डर नहीं है!

(विजयसिंह तलवार निकालता है)

विजयसिंह—जबान बंद करो और तलवार निकालो ।

(इसी समय एक मुसलमान सैनिक आकर आदमख़ान को कोर्निश करता है । फिर तलवार निकालकर खडा होता है ।)

सैनिक—तलवार म्यान में कीजिए ।

विजयसिंह—राजपूत की तलवार एक बार म्यान के बाहर आकर रक्त गंगा में स्नान किए बिना म्यान में नहीं जाती ।

आदमख़ान—(तलवार निकालता हुआ) विजयसिंह ! मेरी तलवार को तुम्हारी तलवार की चुनौती मंजूर है, लेकिन यह जगह तलवारों का करतब दिखाने के लिए मौजूँ नहीं है । तुम राजपूत हो—और राजपूत नमक का कर्ज़ अदा करता है—या झेलता है । यहाँ तुम बादशाह आलिमा के साथी की हैसियत से आये हो—वर्षों से स्वामी का नमक खाया है । इसे अदा करना है । हम आपस में लड़कर खुदकुशी तो करेंगे ही, लेकिन दुश्मन को भी फ़ायदा पहुँचाएँगे ।

(विजयसिंह तलवार म्यान में करता है ।)

विजयसिंह—जीवन में प्रथम बार यह तलवार बिना खून पिए अपने म्यान में जा रही है । इसलिए यह अपने म्यान में बेचैन रहेगी ।

आदमख़ान—इसकी बेचैनी दूर करने के बहुत मौके मिलेंगे, विजयसिंह ! (आगत सैनिक से) तुम क्या ख़बर लाए हो ?

सैनिक—बाजबहादुर हाथ न आ सका—लेकिन रूपमती माँडू के महल में ही है ।

आदमख़ान—रूपमती माँडू के महल में ही है ? तो अब चिड़िया उड़ने न पाए । इसका इन्तज़ाम रखो । साथ ही

यह भी ख्याल रखो कि उसे कोई तकलीफ़ न हो। रूपमती को गिरफ़्तार करने के माने हैं, बाजबहादुर को गिरफ्तार कर लेना।

विजयसिंह—सो कैसे ?

आदमख़ान—मणिवाला साँप मणि की तलाश करता हुआ उसके पास आ ही पहुँचता है। (सैनिक से) जाओ, रूपमती के आराम का इंतज़ाम करो—और उनसे कहो कि आदमख़ान उनसे मिलना चाहता है।

सैनिक—जो हुकम !

(सलाम करके प्रस्थान)

आदमख़ान—(विजयसिंह से) अब हम भी एक दूसरे से रुखसत लें। मुझे देखना है, रूपमती में कितना फ़न है—कितनी राजपूती है और कितनी इन्सानियत है।

विजयसिंह—हूँ ! तो आप ज़हरीली नागिन के बिल में हाथ डालना चाहते हैं ?

आदमख़ान—बेशक ! आदमख़ान पर साँपिन के काटे का ज़हर नहीं चढ़ता।

(कहता हुआ चला जाता है।)

विजयसिंह—अभी तक साँपिन से पाला ही नहीं पड़ा है, सिपहसालार ! इतने दिन बाजबहादुर की चहारदीवारी में बंद रहकर भी रूपमती पालतू साँपिन नहीं बनी है जिनके ज़हर के दाँत टूट गये हों। यह विलासी कुत्ता—क्या करेगा—इसपर निगाह रखनी ही पड़ेगी।

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[माँडू के महल में रूपमती का कक्ष। कक्ष की सजावट सुरुचि और कलापूर्ण है। संगीत एवं नृत्य से सम्बन्ध रखनेवाले प्रसाधन भी रखे हुए हैं; किन्तु हैं कुछ तितर-बितर से। समय संध्या। रूपमती घायल अवस्था में शय्या पर पड़ी हुई है। वीरसिंह पास ही बैठा है।]

वीरसिंह—भाग गया, दुष्ट !

रूपमती—दुष्ट ! कितना कठोर शब्द है यह, वीरसिंह ! उनके प्रति ऐसे शब्द का प्रयोग न करो। इस तीर की नोक मेरे कलेजे में चुभती है।

वीरसिंह—आपके कलेजे में ! क्या कह रही हैं आप ?

रूपमती—ठीक ही तो कह रही हूँ।

वीरसिंह—उसने आप के प्राण लेने का प्रयत्न किया था। वह आप को प्यार नहीं करता।

रूपमती—उनकी तलवार का घाव मुस्कुराकर कह रहा है, वह मुझे सचमुच प्यार करते थे—प्राणपण से चाहते थे। आज भी चाहते हैं। जिन्होंने मेरे लिए राज्य-वैभव गँवाया—सर्वस्व नाश कराया—किस के लिए ? एक नर्तकी के लिए !

वीरसिंह—केवल गायिका—केवल नर्तकी।

रूपमती—नहीं तो क्या क्षत्रिय बाला ! तुम क्षत्रिय हो और इसीलिए तुम्हारी नज़र मेरे क्षत्रियत्व पर जाती है—अर्थात् तुम सोचते हो कि रूपमती ने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया है—किन्तु वीरसिंह—केवल किसी कुल में जन्म ले लेने से ही उस कुल के संपूर्ण गौरव और उत्तरदायित्व में उसका भाग नहीं हो

जाता। मुझे भगवान ने रूप दिया—शरीर में स्फूर्ति दी, संगीत के प्रति रुचि प्रदान की—मेरे माता-पिता ने मेरी इस प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा को परखा—उसे अध्ययन और अभ्यास की खराद पर चढ़ाकर साफ़ किया और बाज़ार में बेच दिया। भरपूर कीमत पायी।

वीरसिंह—आपके पिता ने क्षत्रियोचित कार्य नहीं किया।

रूपमती—क्षत्रियोचित चाहे न किया हो, मनुष्योचित तो किया ही। मैं नाचती थी—मैं गाती थी। यह संसार की चर्चा का विषय बन गया था। जिन्हें अपने ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व पर अभिमान था उनकी आँखों में उपेक्षा, अवहेलना एवं घृणा के अक्षर मैंने पढ़े हैं। मैं कला के लिए अपने क्षत्रियत्व को तिलांजलि देने को तैयार थी। मैं कला के लिए जीना चाहती थी और कला के लिए ही मरना।

वीरसिंह—और कला के लिए ही आपने बाजबहादुर को आत्म-समर्पण किया?

रूपमती—मेरे लिए जीवन से बड़ी वस्तु है कला और कला से भी बड़ी वस्तु है प्रेम। प्रेम पर मैं कला को भी न्योछावर करने को प्रस्तुत थी और हूँ।

वीरसिंह—वह प्रेम आपने बाजबहादुर में देखा?

रूपमती—हाँ, देखा! प्रथम दर्शन में जिस तरह सीता ने राम को, शकुन्तला ने दुष्यन्त को अपना हृदय समर्पित कर दिया था उसी तरह मैंने भी बाजबहादुर को कर दिया।

वीरसिंह—वह मुसलमान है, यह भी........

रूपमती—(बात काटकर) यह भी मैं जान गई—किन्तु प्रीत के सागर में जाति और धर्म के दायरे नहीं हैं। वहाँ मनुष्य जाति एक है। हम दोनों इन्सान थे, हमने अपने प्राण एक कर लिए। न वह मुसलमान रहा, न मैं हिन्दू। मैंने अपना जीवन उनके चरणों पर चढ़ा दिया। आज वह मेरे जीवन को निश्शेष करना चाहते थे, तो उनको इसका अधिकार था।

वीरसिंह—मैं एक प्रश्न पूछूँ?

रूपमती—पूछो।

वीरसिंह—आप बाजबहादुर को प्यार करती थीं, तो उससे उसकी धीरता क्यों छीन ली—क्यों उसे अपने रूप-जाल का बन्दी बना लिया?

रूपमती—इसलिए कि मुझे उनपर क्रोध था। उन्होंने मेरे प्रेम को समझा नहीं। वे अपना नवाबपन, धन-दौलत—वैभव-विलास लेकर मेरी झोंपड़ी में पहुँचे और मुझे खरीद लाये। यही क्या प्रेम करने का तरीका है? उन्होंने धन से मेरा शरीर खरीदा और मेरे प्रेम ने उनसे बदला लिया। मैं उन्हें प्यार भी करती हूँ—उनसे घृणा भी करती हूँ। और प्यार करती हूँ इसीलिए घृणा करती हूँ। बाजबहादुर ने समझा कि मैं उनसे बदला ले रही हूँ। उन्हें मुझपर क्रोध आया और क्रोध इसलिए आया कि वह मुझे प्यार करते हैं।

(आदमख़ान का प्रवेश। साथ में दो सैनिक भी हैं।)

आदमख़ान—किधर है, रूपमती?

वीरसिंह—(तलवार तानता हुआ) यहीं है, आदम।

(आदमख़ान भी तलवार तानता है।)

रूपमती—शांत वीरसिंह! शांत आदमख़ान! रूपमती जा रही है। उसके लिए रक्त-पात अनावश्यक है।

आदमखान—कहाँ जा रही हो, रूपमती! तुमको तो दिल्ली का दरबार याद कर रहा है।

रूपमती—इसीलिए तो मैं अपनी आग में स्वयं जलकर भस्म हो जाना चाहती हूँ। जलने और जलाने का खेल मैंने एक बार खेल लिया—एक आदमी के साथ खेल लिया। इस खेल को मैं पेशा नहीं बनाना चाहती।

आदमख़ान—लेकिन शाहंशाह अक़बर कला के पारखी हैं—उन्होंने आपकी शोहरत सुनी है और वह चाहते हैं कि तानसेन की तरह आप भी दिल्ली के दरबार से कला को पेश करें।

रूपमती—रूपमती और तानसेन में अंतर है—आदमख़ान।

आदमख़ान—क्या?

रूपमती—यही कि वह पुरुष है और मैं नारी!

आदमख़ान—कला की दुनिया में मर्द और औरत का फ़र्क नहीं।

रूपमती—नहीं होना चाहिए—लेकिन है। इन्सान उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाता जहाँ स्त्री-पुरुष का अंतर समाप्त हो जाता है। सम्राट पुरुष हैं—सौंदर्य के प्रति उनकी आसक्ति है। मैं जान-बूझकर तो जाल में नहीं फँस सकती।

आदमख़ान—लेकिन, मुझे तो सम्राट की आज्ञा माननी है।

वीरसिंह—मेरे जीते जी आप इनको दिल्ली नहीं ले जा सकेंगे।

आदमख़ान—मैं इनकी मर्ज़ी के खिलाफ़ तो इन्हें नहीं ले जाऊँगा। आदमख़ान इन्सान है—वह रूपमती और बाजबहादुर के जज़बात से खिलवाड़ नहीं करेगा और सम्राट अक़बर तो इन्सान से भी ऊपर फ़रिश्ते हैं। वह दुश्मन की भी क़द्र करते हैं। वह बाजबहादुर को जिंदा रखना चाहते हैं—माँडू के नवाब की हैसियत से उनकी इज़्ज़त करना चाहते हैं। वह कहीं भी हों, उन्हें खोज लाना होगा।

रूपमती—क्या कहा! आप उन्हें खोजेंगे।

आदमख़ान—बेशक, उन्हें खोजकर आपका माल आपके हवाले कर दिया जाएगा।

रूपमती—तब रूपमती भी जिंदा रहेगी। जिस आदमी ने मेरे कलेजे में छुरी भोंकी है, मैं उसके रास्ते के काँटे साफ़ करूँगी। मैं जिऊँगी। वीरसिंह, मैं जिऊँगी। आदमख़ान मुझे बचाओ—मैं जिऊँगी।

आदमख़ान—आप ज़रूर जिएँगी। मुझे तो पता ही नहीं था कि तुम घायल हो, नहीं तो हकीम को साथ ही लाता। ख़ैर, अब इंतज़ाम हो जाएगा। वीरसिंह—आप इन्हें दूसरे कमरे में आराम से लिटाइये—मैं इनके इलाज का इंतज़ाम करता हूँ।

(सैनिकों सहित जाता है।)

वीरसिंह—(रूपमती से) क्या आपने आदमख़ान का भरोसा कर लिया ?

रूपमती—रूपमती चोर के घर तक जाएगी ।

वीरसिंह—और लूट ली गयी तो ।

रूपमती—रूपमती क्षत्रिय बाला है ।

वीरसिंह—तो कभी-कभी तुममें क्षात्र तेज भी जागता है । मुझे यह सुनकर संतोष हुआ । फिर भी तुम अबला हो—घायल हो और यह यवन-समुदाय खूँखार भेड़ियों से कम नहीं है । मुझे चिंता होती है ।

रूपमती—तुमको भी मेरी चिंता होती है ! क्यों ?

वीरसिंह—नदी में डूबनेवाले अपरिचित के लिए भी सहानुभूति जाग पड़ती है, रूपमती !

रूपमती—अपरिचित के लिए । तब ठीक है । तब तुम मुझे सहारा दे सकते हो । मुझे ले चलो दूसरे कमरे में ।

(वीरसिंह सहारा देकर रूपमती को ले जाता है ।)

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

[स्थान—माँडू गढ से कुछ दूर आसफख़ान की छावनी के निकट मार्ग। रास्ते पर कोई चल-फिर नहीं रहा है। समय संध्या। आसमान में कुछ-कुछ लाली है। एक तरफ़ से विजयसिंह आता है, दूसरी तरफ़ से वीरसिंह। दोनों एक-दूसरे को घूरकर देखते हैं।]

वीरसिंह—इस तरह क्या देख रहे हो ?

विजयसिंह—मैं तो तुम्हें पहचानने का यत्न कर रहा हूँ, लेकिन तुम मुझे क्यों घूर रहे हो ?

वीरसिंह—मैं भी तुम्हें पहचानना चाहता हूँ।

विजयसिंह—तब पहचाना मुझे ?

वीरसिंह—तुमने मुझे पहचाना ?

विजयसिंह—कदाचित् दोनों ने दोनों को नहीं पहचाना।

वीरसिंह—लेकिन तुम्हारी पोशाक से जान पड़ता है कि तुम मुग़ल सेना के कोई अधिकारी हो।

विजयसिंह—और तुम माँडू की सेना के कोई ऊँचे अधिकारी जान पड़ते हो।

वीरसिंह—ठीक ! मैं सेनापति हूँ।

विजयसिंह—हुँ।

वीरसिंह—हुँ क्या ?

विजयसिंह—यही कि बाजबहादुर है मुसलमान और उसका सेनापति हिन्दू !

वीरसिंह—हुँ !

विजयसिंह—हुँ क्या ?

वीरसिंह—यही कि दिल्ली का सम्राट है मुसलमान और उसके अनेक मंत्री, सेनापति और अधिकांश सेना है हिन्दू।

विजयसिंह—क्षत्रिय !

वीरसिंह—स्वाधीनता और अपनी आन के लिए प्राण देनेवाले।

विजयसिंह—अपने देश को अपने हाथों से जंजीरों में कसनेवाले।

वीरसिंह—हुँ !

विजयसिंह—फिर हुँ।

वीरसिंह—हुँ।

विजयसिंह—यह हुँ—बहुत भयंकर है।

वीरसिंह—हुँ।

विजयसिंह—इस हुँ का घूँघट खोलना पड़ेगा।

वीरसिंह—घूँघट खोलने का रिश्ता होगा, तो घूँघट खुलेगा।

विजयसिंह—तो रिश्ता आज ही हो जाए।

वीरसिंह—देखो, तुम राजपूत हो।

विजयसिंह—क्यों नहीं ?

वीरसिंह—राजपूत धोखा नहीं देता।

विजयसिंह—अगर वह मनुष्य है, तो।

वीरसिंह—तो तुम मनुष्य हो ?

विजयसिंह—मनुष्य बनना चाहता हूँ।

वीरसिंह—कैसे ?

विजयसिंह—अपनी इच्छा का स्वामी बनकर।

वीरसिंह—हुँ।

विजयसिंह—हुँ—अब इस हुँ का अर्थ बतलाइए।

वीरसिंह—अर्थ यह है कि तुम मेरे मित्र बन सकते हो।

विजयसिंह—इसलिए कि मित्र बनकर दोनों माँडू के नवाब के दास बनकर उसके लिए अपनी गरदनें कटा डालें।

वीरसिंह—बाजबहादुर तो अंधकार के गर्त में समा गया।

विजयसिंह—तो दोनों मिलकर इतिहास में अपना नाम अमर कर डालें।

वीरसिंह—नहीं विजय—विद्रोह करके।

विजयसिंह—विद्रोह तो मैंने करना चाहा था और मेरी तलवार आदमख़ान की गरदन पर चलनेवाली भी थी।

वीरसिंह—तब?

विजयसिंह—संधि हो गयी।

वीरसिंह—दिल्ली पहुँचने पर आदमख़ान की तलवार तुम्हारी गरदन पर होगी।

विजयसिंह—हुँ?

वीरसिंह—अब तुम हुँ करने लगे।

विजयसिंह—हुँ!

वीरसिंह—इस हुँ का घूँघट खोलना पड़ेगा।

विजयसिंह—हुँ का अर्थ है कि विजयसिंह दिल्ली नहीं जाएगा।

वीरसिंह—क्या करेगा?

विजयसिंह—मालवा में अफ़ीम की खेती।

वीरसिंह—अफ़ीम की या अफ़ीमचियों की !

विजयसिंह—दोनों की।

वीरसिंह—हुँ !

विजयसिंह—हुँ का अर्थ समझाओ !

वीरसिंह—मेरा तात्पर्य है कि अफ़ीम या अफ़ीमचियों की खेती करना राजपूत का काम नहीं है।

विजयसिंह—लेकिन कुसुंबा के प्रेमी तो राजपूत ही हैं। अफ़ीम का नशा उन्हे ही भाता है।

वीरसिंह—हुँ !

विजयसिंह—हुँ—हुँ क्या ?

वीरसिंह—हुँ कि राजपूत यदि हमेशा होश में रहे, तो अपने हाथ से अपनी ही गरदन काट डालें।

विजयसिंह—हुँ।

वीरसिंह—हुँ क्या ?

विजयसिंह—हुँ कि राजपूत का बेहोश रहना ही ठीक !

विजयसिंह—इस समय तुम कहाँ से आ रहे हो ?

वीरसिंह—तुम कहाँ से आ रहे हो ?

विजयसिंह—पहले तुम बताओ।

वीरसिंह—पहले तुम।

विजयसिंह—मैं रूपमती के पास से !

वीरसिंह—रूपमति के पास से—वहाँ क्यों गए थे ?

विजयसिंह—मुजरा—

वीरसिंह—मुजरा सुनने—पागल वह आजकल नाच नहीं सकती—हरेक आदमी के आगे नहीं नाचती।

विजयसिंह—तुमने उसका नाच देखा है?

वीरसिंह—तुम वहाँ क्यों गये थे, पहले यह बताओ।

विजयसिंह—आदमख़ान ने भेजा था।

वीरसिंह—हुँ!

विजयसिंह—हुँ क्या?

वीरसिंह—कुछ नहीं, वह आदमख़ान, वह सम्राट अक़बर, वह बाजबहादुर, वह वीरसिंह—और यह रूपमती।

विजयसिंह—हुँ!

वीरसिंह—हुँ क्या?

विजयसिंह—यही कि तुम होश में नहीं हो।

वीरसिंह—तुमने रूपमती को देखा है?

विजयसिंह—हाँ, देखा है।

वीरसिंह—कैसी हैं वह?

विजयसिंह—शराब का छलकता हुआ जाम।

वीरसिंह—पीने को पागल हुआ तुम्हारा मन?

विजयसिंह—हाँ, लेकिन....

वीरसिंह—हुँ।

विजयसिंह—हुँ क्या?

वीरसिंह—उसे जो देखता है, वह पीना चाहता है!

विजयसिंह—तुमने शायद उसे देखा नहीं है।

वीरसिंह—बरसों देखा है।

विजयसिंह—तो तुम्हारी नसों में खून नहीं है ।

वीरसिंह—हुँ !

विजयसिंह—हुँ क्या ?

वीरसिंह— हुँ !

(अपनी तलवार पर हाथ रखता हुआ चला जाता है ।)

विजयसिंह—हुँ !

(जाते हुए वीरसिंह पर एक भेदभरी नजर फेंककर और आश्चर्य प्रकट करके चला जाता है ।)

[पट परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

[स्थान—माँडू गढ़ में रूपमती का शयन-कक्ष। समय रात्रि का प्रथम प्रहर। कक्ष में विलास के प्रसाधन एवं कला-साधना के साधन यथास्थान सुरुचि के साथ रखे हैं। कक्ष में अनेक शमईयाँ (शमादान) हैं किन्तु उन्हें प्रज्वलित नहीं किया गया है, केवल एक लघु दीप जल रहा है। दीवारों पर सुंदर चित्र टँगे हुए हैं। रूपमती अकेली घूम रही है। उनके हाथ में एक सुंदर रत्न-खचित स्वर्ण पात्र है जिसमें कुछ द्रव पदार्थ है।]

रूपमती—(गाती है)

विष भी आज अमृत बन जावे।
आज अमावस की निशि काली।
घिरी घटाएँ दिशि-दिशि काली।
गहरी है वह विष की प्याली।
आज लालसा प्यास बुझावे।
विष भी आज अमृत बन जावे।
चले गये जिनको था जाना
दुर्लभ जीवन-बोझ उठाना
हुआ असम्भव अब तो गाना,
हृदय आखिरी गान सुनावे।
विष भी आज अमृत बन जावे।

आज कैसा भयानक सन्नाटा छाया हुआ है। काली रात को काली घटाओं ने और भी काला कर दिया है। खेतों से अफ़ीम की महक आ रही है और इस जाली में मरण का काला नाग फुफकार रहा है।

(वीरसिंह का प्रवेश)

वीरसिंह – रूप ! यह तुम्हारा क्या रूप है । इस क्षीण से दीपक के प्रकाश में मेघमाला से तुम्हारे लहकाते हुए काले-काले केश-जाल ब्याल-दल के समान प्राणों को डसना चाह रहे हैं ।

रूपमती—ओह, तुम भी....

वीरसिंह—मैं क्या ?

रूपमती—तुम भी रूप को निरख सकनेवाली नज़र रखते हो—रूप को निरखकर पागल होनेवाला दिल रखते हो—मतवाले की भाँति अनर्गल प्रलाप करनेवाली वाणी रखते हो !

वीरसिंह—मैं भी मानव....

रूपमती—हाँ, तुम भी मानव हो—मैं तो समझती थी, तुम्हारे वक्षस्थल में हृदय के स्थान पर पत्थर है ।

वीरसिंह—पत्थर नहीं है, रूपमती ! तुम्हारे आकर्षण की ज्वाला में जलनेवाला एक कोमल हृदय है—निर्बल हृदय है ।

रूपमती—आज मैं तुम्हें तुम्हारे दुर्बल क्षणों में पकड़ पायी हूँ । आशा है, आज तुम मुझसे झूठ नहीं बोलोगे ।

वीरसिंह—आज मैं तुम्हारे सामने नंगा हो गया हूँ ।

रूपमती—और तुम्हें नंगा देखकर भी मैं मुँह नहीं फेर रही हूँ—क्रोध भी नहीं कर रही हूँ । जानते हो क्यों ?

वीरसिंह—नहीं !

रूपमती—इसलिए कि आज मैं स्वयं नितान्त नंगी होना चाहती हूँ । संसार के दिये हुए और विधाता के दिये वस्त्र फाड़कर फेंक देना चाहती हूँ । बोलो वीरसिंह—तुम मुझे नितान्त नग्न देखकर मुझसे घृणा तो नहीं करोगे ?

वीरसिंह—क्या यही प्रश्न तुम मुझसे पूछना चाहती थी ?

रूपमती—नहीं

वीरसिंह—तब ?

रूपमती—मैं जानना चाहती थी कि मेरी एक मुसलमान से प्रीत देखकर क्या तुम मुझसे घृणा करते थे ?

वीरसिंह—घृणा मैं तुम से नहीं कर सका, क्योंकि तुम बहुत सुंदर हो, किन्तु मुझे तुमपर क्रोध आता था।

रूपमती—और आज ?

वीरसिंह—मेरा प्यार बाँध तोड़कर बहा जा रहा है। तुम्हें मुझपर........

रूपमती—लेकिन वीरसिंह, तुम्हें मुझपर क्रोध करने का क्या अधिकार है। हृदय तो हृदय है—चाहे वह हिन्दू का हो चाहे मुसलमान का। बाजबहादुर का पागलपन तुम्हारे पागलपन से भी अधिक गहरा था—उसने अपने पागलपन में मालवा का राज्य भी गँवा दिया और तुम मालवा के सेनापति पद को मेरे प्यार से तौलते रहे। कभी साहस करके सत्य को मुँह पर नहीं ला सके। सुनो वीरसिंह, मैं प्यार की इज़्ज़त करती हूँ।

वीरसिंह—तो तुम मुझे स्वीकार करोगी ?

(रूपमती की तरफ़ बढ़ता है)

रूपमती—(लाल लाल आँखों से देखती हुई) दूर हो जाओ, नारकी कुत्ते ! झूठी पत्तल कुत्ता चाटता है।

वीरसिंह—(रुककर) ज़हरीली नागिन !

रूपमती—ज़हरीली—हाँ, ज़हरीली (कहकर प्याली का आसव पी जाती है), ज़हरीली।

वीरसिंह—यह तुमने क्या पिया !

रूपमती—रूपमती ने आज तक क्या-क्या पिया है वीरसिंह ! तुमने कभी पूछा ? किसी ने कभी पूछा ? ज़हरीली नागिन को भी कभी-कभी मरण की कामना होती है। इस प्याली में ऐसा विष था जो ज़हरीली नागिन को भी समाप्त कर दे।

वीरसिंह—तुम हँसी कर रही हो। तुममें भारत की साम्राज्ञी बनने की शक्ति है, रूपमती ! तुम क्यों पराजित हो गयी निराशा से !

रूपमती—निराशा से नहीं ! अपने मनुष्यत्व ने मुझे हरा दिया है। मैं एक की होकर अनेक की नहीं हो सकती। मैं कला की साधना करना चाहती थी—वेश्या बनना नहीं।

वीरसिंह—तुम्हें कौन वेश्या बनाना चाहता है।

रूपमती—अभी तुम ही ऐसा ही कुछ यत्न कर रहे थे। उससे पहले आदमखान भी ऐसी कृपा दिखा रहे थे। निष्ठुर विधाता ने क्यों मुझे इतना रूप दिया कि प्रत्येक पुरुष इस पुष्प का मधुप बनना चाहता है। क्या मुझे एक सती की भाँति जीवन बिताने का अधिकार नहीं है !

वीरसिंह—अवश्य है। मैं वैद्य को लाता हूँ जो तुम्हारे प्राण बचाएगा और उसके पश्चात् वीरसिंह प्राण देकर भी तुम्हारी उज्ज्वल चादर को उज्ज्वल रखने का प्रयत्न करेगा।

(वीरसिंह जाने को उद्यत होता है। रूपमती उसका हाथ थाम लेती है।)

रूपमती—तुम्हें कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। मैंने विष-पान नहीं किया। सिर्फ़ एक गहरी सुरा ढाली है। आज मैं आदमख़ान की बेगम बन रही हूँ।

वीरसिंह – बेग़म !

रूपमती –बेग़म ! सारे ग़मों से दूर। वहाँ जहाँ बादलों में बिजली चमक रही है। आदमख़ान ने बतलाया है कि वे—मेरे हृदय-धन, सारंगपुर के मंदिर की सीढ़ियों पर पहली बार मिलनेवाले—मेरे वे अब इस संसार में नहीं हैं। तब मुझे....

वीरसिंह—उनकी आत्मा को व्यथित करने के लिए उनकी आँखें मूँदते ही आदमख़ान की बेग़म बनना तुमने स्वीकार किया।

रूपमती—हः हः हः बेग़म बनना स्वीकार किया। आदमख़ान कहता है कि रूपमती बहुत सुंदर है—इस सुंदर शरीर की उसे भूख है—मैं उसे दान दूंगी—इस शरीर का दान दूंगी। लेकिन आत्मा....

वीरसिंह—आत्मा मर चुकी है !

रूपमती—नहीं वह बाजबहादुर की आत्मा के साथ एक रूप हो रही है। मैंने सचमुच ज़हर पिया है। मुझे चक्कर आ रहे हैं। (पलंग पर लेटती है।)

वीरसिंह—ओह नर्तकी, तुम मुझे अभी तक नचाती रही। मुझे वैद्य को लाना चाहिए।

(प्रस्थान)

रूपमती—वैद्य ! वैद्य आयेगा मरे हुए को जिंदा करने। ऐसा धन्वंतरि कलियुग में कोई नहीं है। मैं उसी दिन मर जाती जिस दिन बाजबहादुर ने मुझे मार डालना चाहा था। तब बचा लिया इस वीरसिंह ने—अब फिर मुझे बचाना चाहता है। लेकिन....लेकिन....अब....

(आगे बोल नहीं पाती। आँखें पथराने लगती हैं। आदमख़ान हाथ में शराब का प्याला लिए हुए प्रवेश करता है।)

आदमख़ान—आज आदमख़ान जीत गया। बाजबहादुर और शाहँशाह अक़बर दोनों से बाजी मार ले गया। बाजबहादुर अब क्या है—कहाँ है—अब तो आदमख़ान है मालवा का सूबेदार और उसकी बेग़म है रूपमती—(रूपमती की तरफ़ बढ़ता है) उठो, देखो, मैं आ गया। उठो, आज हम दोनों एक ही प्याले में शराब पिएँगे। फिर तुम मदहोश होकर नाचना। (रूपमती को हाथ पकड़कर उठाना चाहता है, पर उठा नहीं पाता, उसके हाथ से शराब का प्याला छूट जाता है।) वह क्या—आँखें फिरी हुई हैं। ओंठें नीले हो गए हैं। तुमने ज़हर खा लिया है! आदमख़ान को इतना बड़ा आदमी समझा तुमने कि उसके साथ सुहाग-रात मनाने के लिए उसे इतनी तैयारी करनी पड़ी। पिंजरा पड़ा है, तोता उड़ गया।

(हाथ में बंदूक लिए बाजबहादुर का प्रवेश। वह आदमख़ान की तरफ़ ज़रा भी ध्यान नहीं देता। सीधा रूपमती के सामने खड़ा होता है।)

रूपमती! उठो! बहादुर औरत की तरह, राजपूतानी की तरह सामने खड़ी होकर मेरी गोली झेलो। मुझे अफ़सोस है, मैं उस दिन तुम्हें मार न सका।

आदमख़ान—पर वह चली गयी है। उसने ज़हर खा लिया है।

बाजबहादुर—(रूपमती के पास बैठता है) इन हाथों में अब भी मद है। (चूमता है) मैं समझता था, तू अपने आपको आदमख़ान को सौंप देगी। मुझे क्या पता था कि तू मुझे इतना प्यार करती है। आज मैं तेरा खून करने आया था—अब यह गोली खाली नहीं जा सकती।

(आदमख़ान शंकित होकर दूर हटता है।)

बाजबहादुर—डरो मत आदमख़ान! मैं निहत्थों पर हथियार नहीं चलाता। (आदमख़ान को कुछ भी कहने या करने का अवसर दिये बिना वह अपने सीने पर गोली मार देता है। इसी वक़्त वीरसिंह वैद्य को लेकर आता है।)

वीरसिंह—मैं आ गया हूँ—वैद्य जी को लेकर आदमख़ान।

आदमख़ान—तोता और मैना दोनों उड़ गये हैं। वीरसिंह आओ इन दीवानों को एक साथ सुला दें। मुहब्बत के आसमान में ये दोनों सितारे कयामत की रात तक चमकेंगे।

(दोनों बाजबहादुर को उठाकर रूपमती के पास सुलाकर चादर उढ़ाते हैं—सिर्फ़ दोनों के मुँह खुले रहते हैं।)

[पटाक्षेप]